02

UGC Approved
Refereed Journal
UGC (2)
Jr.No.43053

ISSN 2394-5303

Printing Area™

International Multilingual Research Journal

Issue-32, Vol-09, August 2017

Editor
Dr.Bapu G.Gholap

www.vidyawarta.com

Principal
Seth R.C.S. Arts & Comm. College
DURG (C.G.)

40

भारतीय राजनीति की दिशा एवं दशा का एक अध्ययन

डॉ.आयशा अहमद
सहायक प्राध्यापक (राजनीति विज्ञान)
सेठ.आर.सी.एस.कला एवं वाणिज्य
महा. दुर्ग (छत्तीसगढ़)

डॉ.प्रमोद यादव
सहायक प्राध्यापक (राजनीति विज्ञान)
सेठ.आर.सी.एस.कला एवं वाणिज्य
महा.दुर्ग (छत्तीसगढ़)

****

प्रस्तावना :

प्रस्तुत शोध पत्र में भारतीय राजनीति की दिशा एवं दशा का भूतकाल, वर्तमान एवं भविष्य के परिप्रेक्ष्य में अध्ययन किया गया है, जिसमें राजनीति के स्वरूप में जो परिवर्तन आ रहे हैं, उनका बुनियादी स्तर पर विश्लेषण किया गया है। राजनीति की नई परिभाषा जो मूल्यहीन होती जा रही है, जिसमें विचारों के समानता हेतु भी गठबंधन की आवश्यकता महसूस की जा रही है, आज का राजनीतिक परिवेश विकास के दृष्टिकोण से सोचता है, परन्तु आज विचारों की जो एक श्रृंखला बन गई है, उसे कार्यरूप देना एक चुनौती है। उपनिवेश से मुक्ति के बाद महात्मा गाँधी द्वारा बताये गये मार्ग की ओर लौटना आज प्रासंगिक हो गया है।

अध्ययन का उद्देश्य : प्रस्तुत शोध पत्र हेतु निम्नलिखित उद्देश्य निर्धारित किये गये हैं

१. स्वाधीनता के बाद भारतीय राजनीति के मूल्यों में किस प्रकार से परिवर्तन हो रहे हैं।

२. महात्मा गाँधी द्वारा बताये गये विचारों का हमने अपनी योजनाओं में कहाँ तक शामिल किया है ?

३. भारतीय राजनीति में नैतिक, चारित्रिक पतन, धर्म एवं जाति की भूमिका तथा सामन्ती प्रवृत्ति की दशा क्या है ?

४. भारतीय राजनीति में क्या वैचारिक स्तर पर गिरावट आई है ?

५. भारतीय राजनीति ने क्या गाँधीजी का मार्ग छोड़कर हमने यूरोपियन तार्किक वैधानिक समाज का रास्ता अपना लिया है ?

६. भारतीय राजनीति में क्या पूँजीवादी और नव–उपनिवेशवादी शक्तियों की घुसपैठ हो गई है?

उपकल्पना :

प्रस्तुत शोधपत्र में भारत की वर्तमान राजनीतिक परिदृश्य को उसके भूतकाल, वर्तमान दशा तथा भविष्य की आकांक्षाओं के परिप्रेक्ष्य में देखा गया है कि इस देश की सामाजिक सांस्कृतिक संरचना फेडरल है। इस देश की विविधता स्वायत्त भी है और एकीकृत भी। यही उपकल्पना इस शोध पत्र में निर्धारित की गई है।

अध्ययन पद्धति : प्रस्तुत शोध पत्र के लिए द्वितीयक स्त्रोत का उपयोग किया गया है।

राजनैतिक पर्यावरण की वर्तमान दशा :–

स्वाधीनता के बाद भारतीय राजनीति के रंग उभरकर आये है। इनका क्रम भी धीरे–धीरे विकसित हुआ है पर कुछ बातें बड़ी साफ रही है। भारतीय स्वाधीनता आंदोलन के समय स्वतंत्र भारत के लिये सोचे गये मुद्दे अब बदल गये है। उस समय देश के सामाजिक नैतिक मूल्यों का और दूसरी दुनिया के देशों की तरह विकास के मुद्दे प्रमुख मुद्दे थे। संविधान ऐसा हो जो इन दोनो मुद्दों को समा सके इस का ध्यान रखा गया था। इसीलिये संवैधानिक व्यवस्थाओं को सामाजिक परिवर्तन का दस्तावेज भी कहा गया था। भारतीय नैतिक सामाजिक पक्ष के सरोकार महात्मा गांधी थे और विकास के सरोकार जवाहर लाल नेहरू। देश विभाजन के बाद जो शक्तियाँ उभरी उनका संबंध हिन्दू कट्टरवादी ताकतें भी थी। इन ताकतों की दो पृष्ठभूमि थी। पहली शताब्दी के दूसरे दशक में राष्ट्रीय सेवक संघ का बनना और सावरकर तथा गोंलवालकर द्वारा हिन्दू जातीय प्रभुता की विचारधारा का संगठन। जर्मनी में फासीवादी ताकतों के उदय के साथ दुनिया के बहुत से देशों में जातिवादी भावनाएँ उभरी थी। हिन्दू कट्टरवाद के उदय की जड़ इतिहास की उस रचना के साथ जुड़ी। दूसरे पाकिस्तान के विभाजन के बाद वहां से बहुत से लोग विस्थापित हुए और जब ये विस्थापित इस देश में आए तो उनका विभाजन के प्रति गुस्सा

Seth R.C.S. Arts & Comm. College DURG (C.G.)

ISSN: 2394 5303 | Impact Factor 4.002(IIJIF) | Printing Area International Research Journal | August 2017 Issue-32, Vol-09 | 0164

स्वाभाविक था। ऐसा तबका संवैधानिक निरपेक्षता को मानने के लिये तैयार नही था। जनसंघ उनकी भावनाओं को पूरा करने का सबसे सुलभ संगठन था। आज की भारतीय जनता पार्टी के बहुत से नेताओं की हिन्दू जातीय भावना इन दोनों संदर्भो के साथ जुड़ी हुई है। मुसलमान क्योंकि विभाजन के बाद पस्त हों चुके थे—राजनीति की किसी मुख्य धारा के अंग नही बनें हां वोटों के साधन के रूप में उनका विकास अवश्य हुआ। भारतीय राजनीति मे सांप्दायिकता और धर्म निरपेक्षता को चुनौती भी इन्ही संदर्भो के साथ जुड़ी हुई है।

राजनैतिक प्रदूषण की दिशा :

१.नैतिक चारित्रिक पतन : देश के स्वाधीनता आन्दोलन के प्रमुख वाहक संगठन कांग्रेस के स्वाधीनता के बाद उसके नैतिक—चारित्रिक पतन की चिन्ता गांधी जी को स्वाधीनता से पहले ही हो गई थी। उन्हें ऐसा लगने लगा था कि स्वाधीनता के बाद कांग्रेस का चरित्र स्वाधीनता आन्दोलन के मूल्यों पर आधारित नही होगा। गांधी संभवत: प्रजातांत्रिक दलीय भूमिकाओं को समझते थे। इसीलिये उन्होंने कांग्रेस को आन्दोलन से दल में परिवर्तन के लिये कहा था। कांग्रेस लगभग दो दशक तक देश का प्रभुत्वशाली दल रहा। १९६७ के बाद कांग्रेस का मिथक टूटना प्रारंभ हुआ और आज कांग्रेस को अपने अस्तित्व के लिये संघर्ष करना पड़ रहा है। अभी हाल के दशक तक भारत की राजनीति कांग्रेस संगठन और उसके नेताओं के इर्द—गिर्द केन्द्रित थी। राजनीति की कांग्रेस धुरी का परिणाम ही गैर—कांग्रेसवाद था जो समाजवादियों की रणनीति भी थी। प्रजातंत्र में प्रभुत्ववाद को तोड़ना आवश्यक भी था। यह बात दूसरी है कि रिक्त स्थान की पूर्ति कौन करता है ? दुर्गुणों को दूर करने के लिये डा.राममनोहर लोहिया का सुधारों या टूटो का सिद्धांत गांधी की नैतिक चारित्रिक मांग का एक विचित्र उदाहण था। बहरहाल भारतीय राजनीति अब नैतिक चारित्रिक आधार को गम्भीरता से लेती भी नहीं है।

२.धर्म और जाति : भारतीय राजनीति के वर्तमान दो आधार धर्म और जातियों ही नही उभर गये है। धर्म के आधार पर बंटवारे की राजनीति की समाप्ति के बाद भारत का मुसलमान गरीब तबके का मुसलमान था। भारत के मुस्लिम लीग नेता हिन्दुस्तान छोड़ चुके थे। भारतीय सामाजिक राजनीतिक व्यवस्था मे उनका दर्जा अल्पसंख्यकों का बना। पाकिस्तान बनने के बाद उनके प्रति घृणा कई संदर्भो मे उभरी। यही से सुरक्षा के लिये किसी पार्टी का दामन थामने का सिलसिला भी शुरू हुआ। प्रारंभ में कांग्रेस का हाथ उन्होंने थामा। पर यह साथ देर तक नही रह सका। इतनी बड़ी वोट बैक के प्रति किस को मोह नही होता ? इस वोट बैंक का मोह आज भी कुछ ऐसा ही है। मुसलमानों की मानसिकता दलों मे अपनी सुरक्षा ढूंढने का प्रयास है और दलों का प्रयास अपने को निरपेक्ष बता कर वोट लूटने का। कट्टरवादी हिन्दू दल जब मुसलमानों के वोट प्राप्त करने की बात कहता तो उसके पीछे वोट दोहन की भावना ही है।

भारतीय सामाजिक संरचना की सबसे मजबूत संस्था जाति राजनीति को प्रारंभिक दशक में बहुत अधिक प्रभावित नही कर पाई थी। पर सत्ता का जातियों में बंटवारा प्रारंभ हो गया था। राजनीति मे जाति संतुलन की बात कही जाने लगी थीं आज के आरक्षण और जाति राजनीति का दोष प्राय: डॉ.राम मनोहर लोहिया पर थोपा जाता है। डॉ.लोहिया जाति व्यवस्था के विरूद्ध थे। गांधी और मार्क्स के समन्वय को वे अंतत: वर्ग संरचना में बदलना चाहते थे। डॉ. लोहिया ने पिछड़ों को विशेष अवसर की बात कही थी। डॉ. लोहिया के अनुसार अवसर की यह योजना संरचना का स्थायी रूप नही था। अवसरों का उद्देश्य नव—ब्राम्हणवाद को भी पैदा करना नहीं था। वे शूद्र मुसलमान और औरतों को वे विशेष अवसर के लिये पात्र मानते थे। डॉ. लोहिया की सामाजिक—आर्थिक विश्लेषणता को तोड़—मरोड़ दिया गया। आरक्षण की राजनीति अवसर की राजनीति का विकृत स्वरूप है। प्रजातंत्र की चुनावी राजनीति ने जातियों के ध्रुवीकरण का अवसर भी पैदा किया। सत्ता के जाति बटवारे के रहते—सत्ता प्राप्ति के लिये जाति समूहों का ध्रुवीकरण बाद में राजनीतिक दलों के रूप में बदल गया। यही ध्रुवीकरण कई प्रकार से भारतीय राजनीति पर हावी भी है। यह ध्रुवीकरण स्पष्टत: बड़ी जातियों, पिछड़ी जातियों और अनुसूचित जातियों के बीच है। अनुसूचित जनजातियां क्योंकि जाति संरचना से बाहर है अत: ध

Seth R.C.S. Arts & Comm. College DURG Chhattisgarh
Principal
Seth R.C.S. Arts & Comm
College Durg (C.G.)

ISSN: 2394 5303 | Impact Factor 4.002(IIJIF) | Printing Area International Research journal | August 2017 Issue-32, Vol-09 | 0165

ध्रुवीकरण से उनका न तो कोई संबंध है और न ही भारतीय राजनीति में वे इतनी महत्वपूर्ण है। जिन क्षेत्रीय राजनीतिक दलों की आज तक हम बात करते है वे भी कही न कही धार्मिक समूहों और जातियों के ध्रुवीकरण के साथ जुड़े हुए है। सत्ता के जाति दबाव समूह आज शक्तिशाली है। यह भी एक तथ्य है कि इतिहास मे सत्ता मे रही सामंती जातियाँ आज भी राजकाज उसी धूर्तता के साथ चलाती है जैसे कि वे सामंती शासन चलाया करती थी। धूर्तता की यह राजनीति बड़ी विलक्षण है, जिसमें राजनीति चलाने वालो के छिपे इरादे कभी सामने नहीं आते। अपने को बनाये रखने का एक गुप्त समझौता इन जातियों मे है। जातियों का यह ध्रुवीकरण जातीय राजनीति को उभार गया है।

३. सामंती प्रवृत्ति : यह कहा जा सकता है कि देश प्रजातंत्र बना अवश्य, पर दो सामंती प्रवृत्तियां बराबर चलती रही। पहली प्रशासन मे घालमेल और अपराधियों को संरक्षण। इस देश मे यह काम सत्ता पक्ष और विपक्ष दोनों ने ही किया है। उपर से भले ही इन दो प्रवृत्तियों की निन्दा हो पर दलों की आधिपत्य इन पर रही है और आज भी है। इस वृद्धि से प्रजातंत्रीय नेतृत्व का चरित्र ही बदल गया है। उस बौद्धिक आधार मे कमी आई है जो देश के प्रति चिन्तन को प्रखर कर सके। संसद मे हंगामो का शोर अधिक है गंभीर चिन्तन कम।

इसी दृष्टि से राजनीति मे नव—पाखंडवाद की चर्चा भी आवश्यक है। नई राजनीति से पहले पाखंडवाद का सन्दर्भ धार्मिक चर्चा कृत्यो के साथ अधिक जुड़ा हुआ था। सत्ता का पाखंड निन्दनीय था और कथनी—करनी के अंतर सामाजिक मूल्यों में निम्नतम थे। नवपाखंडवाद भारतीय राजनीति का अब एक अनन्य हिस्सा है। गांधी के मूल्य आचरण की शुद्धता के साथ जुड़े हुए थे। आचरण की शुद्धता अब उन लोगों में भी नहीं है जो धर्म और भारतीय संस्कृति के नाम पर राजनीति चला रहे है।

४. वैचारिक स्तर : भारतीय राजनीति चरित्र की सबसे बड़ी गिरावट वैचारिकी स्तर पर है। दलों और समूहों का वैचारिकी आधार टूटा है। ऐसा लगता है कि वैचारिकी स्तर पर हर दल मे भ्रांतिया है। वे समझ नही पा रहे है—राष्ट्र की वर्तमान सामाजिक सांस्कृतिक संरचना मे कोई पुख्ता राजनीतिक वैचारिकी हो ? वस्तुत: वैचारिकी नीतियों और कार्यक्रम सभी को एक दूसरे के बिना किसी अन्तर्विरोध के दिखाई देते है। भाषाए संस्कृत और राष्ट्रभक्ति जैसे प्रश्न एक सुर के ही है। प्रजातंत्र मे दो वैकल्पिक विचारधारा, साथ—साथ चलती है। विकल्प के नाम पर विचार और कर्म की दृष्टि से भाजपा और कांग्रेस अथवा वामपंथियो के बीच कोई विशेष अंतर नजर नही आता। विचारध ाराओं के बीच समान सेतु निर्मित हो चुका है और राजनीतिक अवसरों के लिये और अधिक हो रहा है। समान सेतु ने विभिन्न दलों के बीच के अंतर को धुंध ला और स्पष्ट कर दिया है।

विचारों के इसी समान सेतु ने अजीब गठबंधन भी पैदा किये है। यह कहा जाने लगा है कि भविष्य की राजनीति अब गठबंधन की राजनीति है। पर ये गठबंधन अधिकांशत: सिद्धांतों के मूल सिद्धांत से समझौता करने के बाद ही स्थापित हुए है। हिन्दूत्व और समाजवादियों का क्या साथ ? पर ऐसा हुआ है। धार्मिक कट्टरता एक साथ जुड़े तो बात समझ में आती है। भारतीय जनता पार्टी—अकाली और मुस्लिम लीग का गठबंधन निश्चित ही सैद्धान्तिक होगा पर कांग्रेस मुस्लिम लीग का गठबंधन प्रश्नों के घेरे में आ ही जाता है। केवल सत्ता चलाने के लिये गठबंधन स्थायी भी नहीं होते अत: राजनीति में अस्थायित्व का दौर आना स्वाभाविक है।

भारतीय राजनीति के अब तक दो रास्ते रहे हैं। एक तो राजनीति स्वतंत्रता आंदोलन के मूल्यों के आध ार पर नैतिक चारित्रिक आधारों पर स्थापित होती। ऐसी अवस्था मे हमे गांधी के मूल्यों और अनुशासन स्वीकार करना पड़ता। ऐसी अवस्था मे आत्म नियंत्रण, चरित्र की शुद्धता औपनिवेशिक मानसिकता से मुक्ति; स्वदेशी और सत्ता का विकेन्द्रीकरण प्रमुख आधार होते। प्रारंभिक दशकों मे इनमे से कुछ आधार स्वीकार भी किये गये। गांधी के नाम को बाद मे हिन्दूत्व शक्तियों ने भी प्रयोग किया, पर गांधी की उनकी समझ प्रचारात्मक अधिक सिद्ध हुई। उपनिवेशवाद से मुक्ति के बाद गांधी का रास्ता पहला रास्ता था। निश्चित ही इस रास्ते की पुर्नस्थापना बड़ा मुश्किल काम है।

Principal
Seth R.C.S. Arts & Comm.
College Durg (C.G.)

दूसरा रास्ता वह है जिस पर हम चल रहे है। यह रास्ता यूरोपियन तार्किक–वैधानिक समाज का रास्ता है। इस रास्ते मे नियमों की नैतिकता और अवसर का चरित्र है। यह रास्ता पारंपरिक समझ को नकार गया है और भारतीय सामाजिक रिश्तों मे दरार डाल गया है। व्यक्तिवादी यह राजनीति प्रश्नों के हल भी व्यक्ति स्तर पर ढूढ़ना चाहती है। कल्पना की गई थी कि संवैधानिक समाजवाद विषमता को समाप्त कर समता के दृष्टिकोण स्थापित कर सकेगा। जातिए धर्म और स्त्री–पुरूष का विभाजन उस कल्पना के विपरीत है। यह कहा जा सकता है कि यह रास्ता अपने आप बना है पर रास्ते के नायक खलनायक देश की राजनाति को कहा ले जाएंगे यह कहना कठिन है। यह एक विचित्र परिस्थिति है जिसमें प्रतिरोध कहीं नहीं है। राजनीतिज्ञों के लिये रास्ता सपाट है और क्योंकि गांधी के सत्य का आग्रह अब प्रासंगिक नहीं–अन्याय को पचाने की पाचन–शक्ति में वृद्धि हुई है।

मुक्ति के उपाय : गांधी का रास्ता हम छोड़ आये है और वर्तमान राजनीति का रास्ता देशानुकूल नहीं। ये ही दोनों तथ्य तीसरे रास्ते की संभावना पर विचार करने को बाध्य कर रहे है। बहुत पहले लोहिया ने इस देश के चिन्तन के लिये कुछ प्रश्न उठाये थे–जिनका संबंध राजनीति की दशा और दिशा से था। यह कहना कठिन है कि लोहिया के वे सवाल आज कितने चिन्तन लायक है। पर उन मुद्दो की प्रासंगिकता अभी भी है। लोहिया को इस देश मे पूंजीवादी और नव उपनिवेशवादी शक्तियों की घुसपैठ की चिन्ता थी। लोहिया का सवाल मातृभाषाओ की समृद्धता का था। इस देश मे राजनीति क्या चुनावी राजनीति ही हो ? ये सभी सवाल अभी भी महत्वपूर्ण है।

निष्कर्ष :– हम एक ओर यह मानते है कि इस देश की सामाजिक सांस्कृतिक संरचना फेडरल है। इस देश की विविधता स्वायत्त भी है और एकीकृत भी। फिर भारतीय राजनीति में हम केन्द्रीयकरण की मांग क्यों कर रहे है ? सामूहिक उत्तरदायित्व को हम राष्ट्रपति के एकाधिकार मे क्यों परिवर्तन करना चाहते है। हमें इस देश के हर आदमी को दलों से प्रतिबद्ध करा देने से क्या प्राप्त होगा ? हमें इस देश के बौद्धिक चिन्तन को भी प्रतिबद्ध करा देने से क्या प्राप्त होगा ? हम इस देश के बौद्धिक चिन्तन को भी प्रतिबद्ध क्यो करना चाहते हैं ? ये सभी प्रश्न इस देश की राजनीति के लिये महत्वपूर्ण प्रश्न है। राजनीति की नई दिशा इन्ही प्रश्नों से निकल कर आयेगी। कट्टरवाद और निहायत ही लचीली व्यवस्था से अलग तीसरे रास्ते की तलाश पर चिन्तन उठना संभवत: इतिहास की नियती होगी।

सन्दर्भ ग्रंथ सूची

१. प्यारे लाल–महात्मा द लास्ट फेज, २०००, पृ. ५४–५५.

२. सावरकर वीडी–हिन्दुत्व, १९८५, पृ. ९०–९२

३. आद्रे ब्रिताई–सोसायटी एंड पोलिटिक्स इन इंडिया, २००४, पृ. १०५–१०६

४. राजकिशोर–भारत लोहिया के बाद, १९८७, पृ. ६५–६६.

५. इन्डियन सोशल साइंस इन्स्टीटयूट कलकत्ता–एथनिक फेडरेलिज्म ऑफ इंडिया, २००१, पृ. ८४–८५.

६. फड़िया डॉ.बी.एल., भारतीय शासन एवं राजनीति, साहित्य भवन पब्लिकेशन, आगरा, २०१३, पृ. २२–२५.

७. मूल प्रश्न : भारतीय राजनीति निर्णायक मोड़ पर, जनवरी मार्च १९९७.

८. सुधीर वेददान, भारतीय राजनीति खतरनाक मोड़ पर, मूल प्रश्न, १९९७, पृ. २–६.

९. लिब्रल टाइम्स, ४ अंक–२, १९९६.

१०. भार्गव नरेश, मूल प्रश्न, भारतीय राजनीति तीसरे रास्ते की तलाश, १९९७, पृ. २५–३०.

–००–

Principal
Seth R.C.S. Arts & Comm. College Durg (C.G.)